

जापान

भारती

अक १/२

विक्रम संवत् २०५२

जनवरी/फरवरी १९९६



बाल विशेषांक

आमंत्रित संपादक  
ओम्प्रकाश सिंहल

संपादक  
सौरभ सिंघल

संपादक मंडल  
अखिल मिश्र

रंजन ७९७  
(रंजन गुप्त)

रंजन कुमार  
सुशील कुमार जैन

पता

5-12-9 दाईसान एवातो  
विल्डिंग,  
उएनो, ताइतो-कू  
तोक्यो 110

फोन/फैक्स/ई-मेल

सौरभ : 3587-3617  
(फोन/फैक्स)

रंजन : 3473-6043  
(फोन/फैक्स)

ranjan@twics.com

सुशील : 3832-1641

रंजन ७९७ 3799-3065

जब मैं छोटा बच्चा था तब हर रोज रात को सोने से पहले अपनी दादी से कहानियाँ सुना करता था। हर रोज कहानियाँ सुना करता था। हर रोज कहानियाँ सुनने पर भी मन अघाता न था। इन कहानियों ने मेरे मन में आस्था, विश्वास, श्रद्धा, प्रेम आदि सदगुणों के बीज बोए। इन सदगुणों ने हमेशा मेरा मार्गदर्शन किया। मीठी वाणी का महत्त्व बतलाया। परिश्रम का पाठ पढ़ाया। निराशा की धूल झाड़ कर आगे बढ़ते रहने का साहस दिया। लेकिन आज के बच्चों को अपनी दादी या नानी से कहानियाँ सुनने की सुविधा नहीं रही - चाहे वे स्वदेश में रहते हों या परदेस में। इसलिए आज इस दायित्व का निर्वाह पत्र-पत्रिकाएँ करती हैं। जो बच्चे परदेस में रहने के कारण अपनी मातृभाषा नहीं पढ़ पाते उनके माता-पिता पत्र पत्रिकाओं में छपी कहानियाँ पढ़ कर सुनाते हैं। इस प्रकार वे अपने बच्चों को अपनी जड़ों से जोड़े रखने का काम करते हैं।

'जापान भारती' का लक्ष्य अप्रवासी भारतीयों को अपनी जड़ों से जोड़े रखना है। 'बाल विशेषांक' का प्रकाशन हमने इसी लक्ष्य को साधने के लिए किया है। इस अंक का सम्पादन हिन्दी बाल-साहित्य के अग्रणी लेखक डॉ० ओम्प्रकाश सिंहल ने किया है। उन्होंने इस अंक के लिए हिन्दी बाल साहित्य के शीर्षस्थ लेखकों यथा सर्वश्री विष्णु प्रभाकर, जय प्रकाश भारती, मधुर शास्त्री, अमरनाथ शुक्ल, देवेन्द्र कुमार, स्व० स्नेह अग्रवाल, डॉ. रवीन्द्र दरगन आदि का सहयोग प्राप्त करके हमारा उत्साह दुगुना कर दिया है। आशा है उनका यह प्रयास अप्रवासी भारतीयों को पसंद आएगा।

सौरभ सिंघल

इस अंक में

इस अंक में		हमारे राष्ट्र प्रतीक	
माँ	जयप्रकाश भारती ३	डॉ. सरला चौधरी	१७
सच्चा मित्र	विष्णु प्रभाकर ६	कविताएँ	
अनोखी शर्त	माधुरी शास्त्री ७	डॉ. रमेश कौशिक	१९
मेरा खिलौना	देवेन्द्र कुमार ८	हमारी आशाएँ	
अपना घर	ओम्प्रकाश सिंहल ११	सुजीत सराफ	२१
मुस्काया सूरज	स्व. स्नेह अग्रवाल १२	वर्षांत और वर्षारंभ	
बेसुरी बांसुरी	डॉ. रवीन्द्र दरगन १३	मिवाको कोएजुका	२४
बदल गई बुद्धि	अमरनाथ शुक्ल १५	ऋतुराज वसंत	
		डॉ. शशि तिवारी	२६
		एई ना श्ले जापान	
		मीता राय	२९
		रामा : शैसल थैके	
		श्रीता यदु	३१
		थादक एकाल	
		कलाप दास ७९७	३२

उत्तर भारत का प्रसिद्ध मेला है नौचंदी। यह मेरठ में लगता है। सौ साल से अधिक हो गए इस मेले को। पहले तो केवल दस दिन तक चलता था, अब



बीस-बाइस दिन चलता है। पुरानी बात है। मैं बहुत छोटा था, शायद सात साल का बच्चा। नौचंदी का मेला लगता तो रोज गहमागहमी रहती। हम जिस मोहल्ले में रहते थे, वह सेठों का मोहल्ला था। सभी परिवार काफी सम्पन्न थे। पूरे मोहल्ले के बच्चे अपने-अपने माता-पिता या बड़े भाई-बहनों के साथ शाम को मेले में जाया करते थे। नौचंदी मेले के अवसर पर हमारे यहाँ कोई न कोई नाते-रिश्तेदार भी मेला देखने आ जाया करते थे।

मेरे पापा वकील हैं। उन दिनों उनकी वकालत खासी चलती थी। कोर्ट से लौटते, उससे पहले ही ग्रामीण मुवक्किल घर पर आ पहुँचते। मुझे मेला दिखाने कौन ले जाता!

शाम के समय जब अड़ोस-पड़ोस के बच्चे सज-धज

कर मेले में जाते तो मैं उन्हें टुकुर-टुकुर ताका करता था। अक्सर बहुत उदास हो जाता था। एक दिन माँ ने मौका देखकर पापा से सिफारिश की कि लड़के को मेला दिखा लाओ। बच्चा है, इसका मन भी हुमकता है। उस दिन पापा कुछ कम व्यस्त थे। उन्होंने हामी भर दी।

कोर्ट से लौटकर वह स्नान-ध्यान किया करते, फिर भोजन करने बैठते। उस दिन भी इस सब कार्यवाही में रात के नौ बजे गए। मेरे लिए एक-एक पल कठिन हो रहा था - पता नहीं हम मेले में जा सकेंगे या नहीं।

खैर, नौ बजे पापा ने मुझे साथ लिया और घर से निकल पड़े। उस उम्र में उन दिनों मेला देखने की कैसी उमंग होती थी - यह भला शब्दों में बाँधा जा सकता है! हम दोनों सड़क पर पहुँचे। मेले के लिए इक्के (ताँगे) चला करते थे। हम एक इक्के पर सवार हो गए। उसमें चार आदमी पहले से बैठे थे। पापा किसी तरह बैठने की जगह पा गए। बालक को उन दिनों फालतू की सवारी माना जाता था। इक्केवाला शायद आधा

किराया लेता था। मुझे किसी तरह उकड़ू होकर बैठना पड़ा। इक्का चला तो मेरा घुटना इक्के से रगड़ खाने लगा किन्तु मैंने उसकी परवाह न की। हाँ, वहाँ की खाल छिल गई, कई दिन टीसता रहा।

कुछ ही देर में हम मेले में पहुँच गए। मुख्य द्वार से पहले कई तरह के हिंडोलें, झूले तथा खेल अपने-अपने पंडाल लगाए हुए थे। सर्कस के बाहर खूब रोशनी थी। लंगूर और कई जोकर उछल-कूद कर रहे थे। भीड़ का तो कोई ओर-छोर ही नहीं था। पापा ने मेरी अँगुली पकड़ रखी थी। किसी भी खेल को उन्होंने न देखने दिया और टिकट लेकर अंदर जाने का तो प्रश्न ही नहीं था।



हम मुख्य मेले के एक बाजार से झटपट गुजरते हुए एकदम निर्जन जैसे इलाके में पहुँचे। वहाँ छोटा-सा मंदिर था - चंडी देवी का पुराना मंदिर। लेकिन उन्हीं दिनों नया मंदिर

भी बन गया था जिस पर खास तौर से सजावट और चहल-पहल रहती थी। पुराने मंदिर में इक्का-दुक्का ही कोई जाता था। वहाँ चंडी के दर्शन करने के बाद हम मेले में आ गए। मुझे रह-रहकर सर्कस का ध्यान आ रहा था, किन्तु मन मारना पड़ा।



तभी पापा के कोई परिचित मिल गए। मुझे हिदायत हुई कि उन्हें नमस्कार करूँ। खैर, बड़ों का आदर तो होना ही चाहिए। वह कोई मुनीम जी थे। मुनीम जी पापा के पुराने दोस्त रहे होंगे। वह कम से कम पंद्रह मिनट इधर-उधर की चर्चा करते रहे। मुझे लगता रहा कि मुनीम जी को मेला देखने में खास दिलचस्पी नहीं थी। खैर, किसी तरह मुनीम जी के बंधन से छुटकारा मिला। अब थोड़ा और आगे बढ़े। एक चौराहे पर पापा के कोई अन्य वकील मित्र मिल गए। वकील साहब स्वभाव से मज़ाकिया थे। वह मुझ से भी कई तरह के सवाल करते रहे। पूछने लगे - "क्यों भई, क्या-क्या खाया-पिया, क्या खरीदा मेले में।" मेरे पास चुप रहने के अलावा कोई उत्तर न था।

वकील साहब चलते हुए बोले - "बेटा शरमीला है तुम्हारा।"

मेला क्या हुआ, मुलाकातियों का संगम हुआ। शायद छह-सात ऐसे परिचितों को झेलना ही पड़ा। रात के साढ़े दस बज चुके थे। भीड़ कम हो गई थी। मेला ढलाव पर था। हम भी लौट पड़े। वही ताँगे की तंग सवारी। लौट के बुद्ध घर को आए।

अम्मा तो हमारी राह देख रही थीं। उन्होंने घर में घुसते ही उत्साह से पूछा - "देख आए बेटा मेला, क्या-क्या देखा, क्या लाए?" मैं एकदम चुप। माँ कुछ हैरान-परेशान हुईं। मेले से लौटने पर गुमसुम, आखिर क्यों? उन्होंने फिर पूछा - "क्या हुआ बेटा, क्या खाया-पिया?" मैं फिर भी चुप। अब वह पापा की ओर मुखातिब हुई - "आपने इसे डौटा-डपटा है क्या?"

पापा झट से बोले - "नहीं-नहीं, मैं क्यों डौटने लगा भला?"

अब तो माँ का और भी

क्या तुमने कुछ नहीं खरीदा?" मेरी रुलाई फूट पड़ी। पापा अपनी सफाई देते हुए बोले - "इसने कुछ दिलाने को कहा ही नहीं।"

माँ काफी नाराज हुईं। कहने लगी - "तुम इसे मेले में ले गए थे या मातमपुरी में? तुम्हें कुछ नहीं सूझा।"

माँ ने कहा - "अब मैं तुम्हें मेले में ले जाऊँगी। तुम जो कहोगे वह दिलवाऊँगी।" उन्होंने मेरे बुझे मन में फिर से एक दीपक जला दिया। मैं इस आशा में सोया कि कल दुबारा मेले में मनचाही खरीदारी हो सकेगी।

लेकिन दूसरे दिन माँ मुझे मेला दिखाने नहीं ले जा सकीं। पड़ोस में कोई गमी हो गई थी।

तीसरे दिन माँ ने सवेरे ही कह दिया कि आज दोपहर बाद वह मुझे और मेरी दो बहनों को मेला दिखाकर लाएंगी। उस दिन स्कूल में बार-बार यही ख्याल आता रहा कि कब छुट्टी हो, कब घर पहुँच जाऊँ। लगा

**"अब मैं तुम्हें मेले में ले जाऊँगी। तुम जो कहोगे वह दिलवाऊँगी।" उन्होंने मेरे बुझे मन में फिर से एक दीपक जला दिया।**

प्यार उमड़ आया। मुझे बाँहों में लेती हुई बोली - "क्यों बेटा,

दिन बहुत लम्बा हो गया है। आखिर छुट्टी हुई। घर पहुँचते

ही मैंने माँ को दिलजगई की कि मेला ले चलोगी ना। माँ की आदत थी कि हर काम में रुचि और उत्साह दिखाती। उन्होंने मुझसे कहा कि हम दो बजे मेले के लिए चल देंगे।

दो बजे भी नहीं थे कि माँ और मेरी दोनों बहनें तैयार हो चुकी थीं। हमारी मिसरानी जिसे हम "दादी" कहा करते थे, वह भी साथ जा रही थी।

हम पाँचों घर से निकले। माँ ने दादी से कहा कि वह एक सालिम ताँगा कर लें यानी उसमें ताँगेवाला कोई अन्य सवारी न बैठाए। ऐसा ही हुआ।

हम तीन बच्चे आगे की सीट पर ऐसे बैठे मानों महाराजा के सिंहासन पर विराजे हों। पीछे की सीट पर अम्मा और दादी बैठ गईं। मुझे याद आया कि पापा कैसी फिचफिच में ताँगे में ले गए थे। मैंने कई बार अपने छिले हुए घुटने पर हाथ फेरा।

हमारा ताँगा अच्छी चाल से चला जा रहा था। आसमान में सुहानी धूप थी। हवा भी चल रही थी। ताँगा यों ही दो-चार घंटे चलता रहता तो अच्छा होता लेकिन अचानक थोड़े झटके से घोड़ा रुका। मेला आ गया था। हम नीचे

उतरे। सामने ही झूला था। माँ ने पूछा - "कौन-कौन से झूले में बैठेगा।" मेरी बहनें बहुत उत्सुक थीं। झट दादी ने तीन टिकट लिए और उनके साथ झूले में बैठ गईं। मुझे झूले में बैठने में डर लगता था। माँ मुझे लिए पास में खड़ी रहीं। माँ ने गंडेरी खरीद लीं। हम दोनों खड़े-खड़े गंडेरियां चूसते रहे।

झूले के चक्कर खत्म हो गए तो माँ एक बढ़िया खोमचे वाले के पास ले गईं। चाट में जिसे जो पसंद था, वही पत्ता उसने बनवाया। दो-तीन

बच्चों के लिए भी रंगीन किताबें लीं।

शाम ढलने लगी थी। माँ ने कहा कि अब लौटना चाहिए। नौचंदी के मेले में देसी घी का हलुवा-पराँठा विशेष रूप से मिलता है। एक पराँठा इतना बड़ा होता है कि आठ-दस आदमी उसे खा पाएँ। आसपास उसकी सुगंध फैली हुई थी। मैंने माँ से कहा - "तुमने पापा के लिए तो कुछ लिया ही नहीं।"

माँ कुछ झुंझलाई सी बोली - "वो हमारे लिए मेले से क्या ले गए थे?" पर दूसरे ही

हमारा ताँगा अच्छी चाल से चला जा रहा था। आसमान में सुहानी धूप थी। हवा भी चल रही थी। ताँगा यों ही दो-चार घंटे चलता रहता तो अच्छा होता लेकिन अचानक थोड़े झटके से घोड़ा रुका।



पत्ते खाने पर भी रोक-टोक नहीं थी। अब हम नौचंदी के मुख्य बाजार में जा पहुँचे थे। वहाँ घूमते रहे, मनचाही चीजें खरीदते रहे। खेल तमाशे भी देखे। दूर-दूर से आई दुकानें देखीं। माँ कम पढ़ी-लिखी थीं, फिर भी उन्होंने 'सत्यनारायण की कथा' पुस्तक खरीदी। हम

क्षण वह सामने की दुकान की ओर बढ़ीं। उन्होंने गर्मागर्म हलुवा-पराँठा एक डिब्बे में बँधवा लिया।

शाम हो गई थी। मेले में भीड़ बढ़ गई थी। हमने वापसी के लिए ताँगा पकड़ लिया।

भारत का एक नगर है - कन्नौज। कभी वहाँ चैद्रापीड नाम का राजा राज्य करता था। उसका एक सेवक था। नाम था धवलमुख। वह घर में कभी खाना न खाता। हमेशा घर से बाहर ही भोजन करता। एक दिन उसकी पत्नी ने उससे पूछा, "आपको हर रोज खाना कौन खिलाता है?"

धवलमुख ने उत्तर दिया, "तुम नहीं जानती, मेरे दो मित्र हैं। एक का नाम है कल्याणवर्मा। वह मुझे खूब पेट भरकर बढ़िया-बढ़िया भोजन कराता है। दूसरे दोस्त का नाम है - वीरबाहु। वह हमेशा मेरे लिए प्राण देने को तैयार रहता है।"

पत्नी ने यह सुनकर कहा, "बड़े अचरज की बात है। आपने कभी मुझे तो बताया ही नहीं। न कभी उनसे मिलवाया। मैं कल अवश्य आपके साथ चलूंगी।"

धवलमुख ने कहा, "जरूर चलना।"

अगले दिन वह धवलमुख अपनी पत्नी को साथ लेकर अपने मित्र कल्याण वर्मा के घर गया। अपने मित्र की पत्नी को देखकर कल्याण वर्मा बहुत प्रसन्न हुआ। उसने दोनों का खूब स्वागत किया। पत्नी बहुत प्रसन्न हुई।

दूसरे दिन वे दोनों वीरबाहु के घर गए। वे जब वहाँ पहुँचे, तो वीरबाहु पास खेला रहा

था। उसने अपने मित्र और उसकी पत्नी को देखा, उनके कुशल समाचार पूछे, और फिर पहले की तरह खेलने लगा।

थोड़ी देर में धवलमुख अपनी पत्नी के साथ घर लौट आया। पत्नी ने कहा, "आपके मित्र कल्याणवर्मा ने हमारा कैसा आदर-सत्कार किया। लेकिन वीरबाहु ने तो केवल कुशल समाचार ही पूछा। वह कैसे तुम्हारा बड़ा मित्र हुआ?"



धवलमुख मुस्कराया, बोला, "तुम उसकी परीक्षा लेना चाहती हो। ऐसा करो, तुम कल अकेली उन दोनों के पास जाओ, और उनसे कहो कि राजा मेरे पति से बहुत नाराज़ हो गया है। किसी तरह आप उनकी रक्षा कीजिए। इस पर जो कुछ वे कहेंगे या करेंगे उससे तुम्हें असलियत का पता लग जाएगा।"

पत्नी ने ऐसा ही किया। वह पहले कल्याणवर्मा के घर गई और उन्हें सब कहानी सुनाई।

कल्याणवर्मा ने उत्तर दिया, "देवी! मैं वणिकपुत्र हूँ। मैं राजा से लोहा कैसे ले सकता हूँ। ऐसी स्थिति में तुम्हारे पति की रक्षा नहीं कर पाऊँगा।"

निराश होकर पत्नी वीरबाहु के पास पहुँची। उसने उसकी कहानी सुनते ही अपने हथियार सँभाले और तुरंत धवलमुख के पास पहुँचा। धवलमुख ने उसे बताया कि अभी-अभी मुझे समाचार मिला है कि मंत्रियों ने राजा को सही-सही बात बता दी है। राजा मुझ पर प्रसन्न हो गया है। अब आपको कष्ट करने की आवश्यकता नहीं है।

यह सुनकर बाहुबली बहुत प्रसन्न हुआ और अपने घर चला गया।

तब धवलमुख ने अपने पत्नी से कहा, "देखा तुमने मेरे इन दोनों मित्रों को। कितना और कैसा अन्तर है इनमें। एक की दोस्ती केवल बाहरी शिष्टाचार मात्र है। दूसरे की दोस्ती सचमुच की दोस्ती है। चिकनाई दोनों में है, लेकिन एक में तेल की चिकनाई है तो दूसरे में शुद्ध घी की।"

पुरानी बात है। उन दिनों अयोध्या नगरी का नाम साकेत था। उस नगरी में एक महिला रहती थी- नाम था सुवर्णाक्षी। उसने एक पुत्र को जन्म दिया। पुत्र के मुख से जो शब्द निकलता था, उसमें घोड़े के हिनहिनाने जैसा ध्वनि आती थी, इसलिए उसका नाम अश्वघोष रखा गया। अश्वघोष ने बहुत थोड़े समय में व्याकरण और साहित्य का अध्ययन

कर लिया। उसकी रुचि कविता में थी। वह सुंदर श्लोक बनाने लगा। निरंतर परिश्रम और अध्ययन से वह महान पंडित और महान कवि बन गया।

धीरे-धीरे

अश्वघोष का यश चारों ओर फैल गया। नाम हो जाने से समाज में उसका आदर होने लगा। जब फूल खिलता है, तो उसकी सुगंध चारों ओर फैल जाती है। इसी प्रकार कवि अश्वघोष का नाम पाटलिपुत्र जा पहुँचा। उन दिनों हमारे देश में कौशल और मगध अत्यंत बलशाली राज्य थे। अवंती भी अच्छा राज्य था। मगध नरेश के दरबार में अश्वघोष का बहुत सम्मान हुआ। उसने वहाँ सुंदर काव्यग्रंथों की रचना की। अश्वघोष की प्रशंसा केवल अपने देश तक ही नहीं, विदेशों तक भी जा पहुँची। अश्वघोष ने भगवान् बुद्ध के चरित्र और उपदेशों को लेकर एक महाकाव्य लिखा, उसका नाम था 'बुद्ध चरित'। उसकी बहुत चर्चा हुई।



## अनोरखी शर्त

मधुर शास्त्री

कुछ दिन बीते कि मगध का बल और सौंदर्य दूसरे राजाओं को खटकने लगा। कई राजाओं ने हमले किए, परंतु वे पराजित हुए। उन दिनों एक भी राजा ऐसा नहीं था, जो मगध की ओर आँख उठा सके। एक दिन मगध को महान कष्ट का सामना करना पड़ा। मगध का सारा सैन्य बल नष्ट हो गया। धन और सम्पत्ति भी लुट गई। मगध को पराजय देने वाला

था महान वीर कनिष्क। कनिष्क ने पाटलिपुत्र को चारों ओर से घेर लिया। मगधवासी भयभीत हो गए। डरी हुई जनता मौत के सपने देखने लगी। सभी को घमासान युद्ध होने की आशंका थी। तभी लोगों ने देखा कि कनिष्क का एक दूत आ रहा है।

दूत का रथ रुका। मगध नरेश के सैनिक सम्मान के साथ दूत को राजसभा में ले गए। दूत के राजसभा में पहुँचते ही सन्नाटा छा गया। दूत ने मगध नरेश का अभिवादन किया। नरेश ने दूत से पहले कुशल-मंगल पूछा। फिर आने का कारण बताने के लिए कहा।

दूत बोला - "महाराज! आपको पता ही है कि महावीर कनिष्क की सेना ने आपके नगर को चारों ओर से घेर लिया है। हमारी सेना का बल अपार है। आपकी सेना जीत नहीं सकती। फिर भी अगर आप चाहते हैं, तो युद्ध की घोषणा की जा सकती है।"

नरेश ने कहा - "दूत, तुमने जो कुछ कहा, उसका अभिप्राय हम समझ गए हैं। हम

**" हम अपना कर्तव्य अच्छी तरह समझते हैं। हमें व्यर्थ ही खून की होली खेलने का शौक नहीं है लेकिन हम हर प्रकार से अपना सम्मान सुरक्षित रखना चाहते हैं। "**

लोग क्षत्रिय हैं। अपने सम्मान की रक्षा के लिए अपने प्राणों का बलिदान करना हमारा धर्म है। हम युद्ध में जय-पराजय की चिंता नहीं करते।”

दूत बोला - “वह तो ठीक है महाराज ! परन्तु हमारे सम्राट चाहते हैं कि आप उनकी कुछ शर्तें मान लें। ऐसा करने से युद्ध से बचा जा सकता है। प्रजा को कष्ट से बचाया जा सकता है। प्रजा को कष्ट से बचाना राजा का कर्तव्य है।

राजा ने कहा - “हम अपना कर्तव्य अच्छी तरह समझते हैं। हमें व्यर्थ ही खून की होली खेलने का शौक नहीं है लेकिन हम हर प्रकार से अपना सम्मान सुरक्षित रखना चाहते हैं। इसके लिए कुछ भी करना पड़े।”

“ठीक है महाराज ! हमारे सम्राट आपकी शक्ति से परिचित हैं। वीरों के प्राण बहुमूल्य होते हैं। इसलिए आप दो शर्तों को स्वीकार कीजिए।” - दूत ने फिर कहा।

नरेश पहले तो सोचने लगे। फिर कुछ सोचकर बोले - “यदि ऐसा है, तो तुम निर्भय होकर अपनी शर्तें रखो।”

सारी सभा मौन थी। सभी अपने-अपने ढँग से सोच रहे थे। कोई भयंकर घटना के बारे में सोच रहा था, तो कोई मन ही मन प्रभु से शान्ति की प्रार्थना कर रहा था। दूत ने सन्नाटा तोड़ते हुए कहा - महामहिम मगध नरेश ! हमारी केवल दो इच्छाएँ हैं। पहली यह कि भगवान् बुद्ध द्वारा व्यक्तिगत रूप से प्रयोग में लाया गया भिक्षा पात्र हमें भेंट में देने की कृपा करें। दूसरी यह कि हम मगध के राजकवि अश्वघोष को अपने यहाँ रखना चाहते हैं।

यह सुनकर मगध-नरेश पहले तो उदास हो गए। फिर यह सोचकर कि आज उनकी राजसभा का एक कवि पुरस्कृत हो रहा है वह मन ही मन प्रफुल्लित हो उठे। उन्होंने दूत की इच्छाएँ पूरी कर दीं।

कनिष्क ने अश्वघोष को बौद्ध सभा का अध्यक्ष बनाया। अश्वघोष बौद्ध धर्म के इतिहास में सदा के लिए अमर हो गए।



पिं

जरे में बन्द तोता मुझे बहुत पसन्द था। लेकिन उसकी आफत आ गई थी।

दो दिन पहले की बात है। मैं घर के दरवाजे पर खड़ा था। एकाएक आवाज आई - 'बाबूजी, खिलौना ले लो।' मैंने चौंककर देखा - तेरह-चौदह बरस का एक छोकरा खड़ा था। उसके हाथ में एक छड़ी थी। छड़ी पर कुछ खिलौने झूल रहे थे। कुछ मिट्टी के, कुछ कागज के। देखने में एकदम साधारण।

मैंने कहा - “मैं क्या बच्चा हूँ जो खिलौने खरीदूँगा।”

“एक ले लो न बाबू।” - खिलौने वाले ने फिर कहा।

“किसी बच्चे को दे दो।” - मैंने सलाह दी।

“किसी बच्चे ने नहीं खरीदा बाबू। सुबह से घूम रहा हूँ। पर एक भी नहीं बिका। ले लो न। भगवान् भला करेगा।”

मैंने खिलौनों पर ध्यान दिया, पर कोई पसंद नहीं आया। मिट्टी के मालू, रीछ, डाल पर बैठी चिड़िया, चूहा और बिल्ली। एक तोता था पिंजरे



उसके अन्दर  
नन्हा-सा तोता।  
ध्यान से देखने पर  
हरा-हरा मालूम  
पड़ता था। ऐसे  
रददी खिलौने कौन  
बच्चा खरीदता।

मैंने वही  
तोता खरीदा -  
पिंजरे में बंद। दो  
रुपए में। अब उसी  
की आफत आ गई  
थी। शैली उसे  
छोड़ना नहीं चाहती।

शैली  
मकान की ऊपर  
वाली मंजिल पर  
रहती है अपनी नानी के साथ। शैली की माँ दफ्तर में  
नौकरी करती है। शैली छोटी है, पीछे से कौन  
देखभाल करे। इसलिए माँ ने शैली को उसकी नानी  
के पास छोड़ा हुआ है। शैली के नाना नहीं हैं। नानी  
और वह - बस दो ही हैं।

मैंने पिंजरे में बन्द तोते को  
कील से लटका दिया। तभी शैली आ  
गई। वह रो रही थी। नानी ने मारा  
था इसीलिए। मैंने उसे गोद में उठा  
लिया। वह मुस्कराने लगी। रोना भूल  
गई। उसकी नजरें पिंजरे में बन्द  
तोते पर टिकी थीं। वह खिलौने की  
तरफ हाथ बढ़ाने लगी तो मैंने उसे  
गोद से उतार दिया।

अब वह गर्दन ऊँची करके  
खिलौने को ताक रही थी। सूखे हुए  
ऑसू गालों पर चमक रहे थे। मैंने कहा - "ना बेटा,  
उसे नहीं लेते। तुम्हारे लिए और ला दूँगा।" पर  
उसने मेरी बात नहीं सुनी। बस, उसी तरह खिलौने



की तरफ हाथ बढ़ाती  
रही जैसे उसे अपने पास  
बुला रही हो।

मुझे मालूम था  
कि हाथ में उठाते ही  
शैली खिलौने को तोड़  
देगी। कील के सहारे  
लटका पिंजरे में बन्द  
तोता कितना अच्छा लग  
रहा था। मैं शैली को  
वहीं खड़ी छोड़कर बाहर  
निकल गया। शाम को  
घर लौटा तो पत्नी ने  
कहा - "शैली, तोते वाला  
खिलौना लेना चाहती  
है।"

"तुमने दे तो  
नहीं दिया।" मैंने पूछा, फिर देखा कि तोते वाला  
पिंजरा कील से लटका झूल रहा है।

"दिया तो नहीं है, पर वह सारा दिन उसके  
लिए मचलती रही है।" पत्नी ने कहा। तभी शैली आ

**"एक ले लो न बाबू।" - खिलौने वाले ने फिर  
कहा।**

**"किसी बच्चे को दे दो।" - मैंने सलाह दी।**

**"किसी बच्चे ने नहीं खरीदा बाबू। सुबह से  
घूम रहा हूँ। पर एक भी नहीं बिका। ले लो न।  
भगवान् भला करेगा।"**

गई। मैंने उसे गोद में उठा लिया। अब तोते और  
शैली के बीच बहुत कम फासला था। मैं उसे देख  
रहा था - वह एकटक तोते को घूरे जा रही थी।

